International Journal of Applied Research 2020; 6(8): 207-209

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2020; 6(8): 207-209
www.allresearchjournal.com
Received: 18-06-2020
Accepted: 22-07-2020

डॉ. मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग आर0बी0डी0
महिला महाविद्यालय, बिजनौर,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग आर0बी0डी0
महिला महाविद्यालय, बिजनौर,
उत्तर प्रदेश, भारत

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और महिला योगदान

डॉ. मंजु चौधरी

प्रस्तावना

अंग्रेजी हुकुमत के दौरान साम्राज्यवादियों के द्वारा बार–बार इस बात की घोषणा की गई कि भारत में उनका अन्तिम लक्ष्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। सदियों से व्याप्त कुरीतियों और अन्धविश्वासों को दूर कर भारत में आधुनिक राष्ट्र के रूप में तब्दील करना उनका परम कर्तव्य है। किन्तु वास्तविकता यह थी, कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का प्रधान लक्ष्य भारतीय आर्थिक संस्थानों का दोहन करना था और अपनी पूंजीवादी शोषणकारी व्यवस्था को मूर्त रू प देने के लिए उनसे कुछ उदारवादी कदम उठायें निश्चित तौर पर भारतीय महिलाओं को भी इसका तात्कालिक लाभ मिला। अंग्रेजी औपनिवेशिक नीतियों के कारण उन्हें पुरूषों पर ज्यादा निर्भर रहना पड़ा। [1] अंग्रेजी शासन के दौरान ही महिलाओं की अवस्था पर समाज सुधारकों का ध्यान गया। वस्तुतः महिला मुक्ति सबंधी विचार सभी समाज सुधारकों के द्वारा चलाये गये समाज सुधार आदोलनों के कार्यक्रम प्रमुख से उभरा समाज सुधार आंदोलनों की शुरूआत मुख्य रूप से पुरूषों के द्वारा की गई। यथा राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, केशवचन्द्र, महादेव गोविन्द राणाडे आदि के द्वारा। [2] इन महापुरूषों ने ब्रिटिश शिक्षा पद्धति से लाभ उठाया था, इनके ऊ पर पाश्चात्य उदारवादी का प्रभाव था। अधिकांश समाज सुधार ऊँची जाति से थे, अतः ऊँची जातियों में कुप्रथाओं के प्रकोप पर ही उनका ध्यान केन्द्रित रहा। महिलाओं के संदर्भ में कुलीन महिलाओं के दमन–शोषण और उनसे जुड़े सुधार कार्यक्रम पर उनका ध्यान केद्रित रहा। महादेव गोविन्द राणाडे के शब्दों में उन्नीसवीं सदी के समाज सुधार आंदोलन का स्वरूप महान हिन्दू परम्परा के अनुकूल था।.....इनका आधार प्राचीन सिद्धान्त था। [3] उन्होंने जाति व्यवस्था एवं परिवार की सरंचना को कोई चुनौती नहीं दी, बल्कि प्राचीन काल में यह संस्थायें बहुत अच्छे ढंग से काम कर रही थीं। वर्तमान के अधोपतन का कारण बाद की घटनाएं. थी।[4] उनके द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि सामाजिक बुराईयों जैसा सती प्रथा एवं शाश्वत विधवापन का उदाहरण प्राचीन भारत में नही मिलता। जोर देकर कहा गया कि हिन्दू धर्मशास्त्र एवं हिन्दू विधि गौतम बुद्ध से पूर्वकाल में महिलाओं को काफी ऊँचा सम्मान प्रदान करते है। [5] राजा राममोहन राय ने भी सती प्रथा के अनुमूलन आधार प्राचीन धर्मग्रन्थ को ही बनाया। उन्होंने रू ढ़िवादी हिन्दुओं की चुनौती को स्वीकार किया और उन्हें जबाब हिन्दू धर्मग्रन्थ से देना चाहा। इसी प्रकार ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह पुनर्निवाह की वकालत पराशर संहिता का हवाला देकर की। [6] लाला लाजपतराय ने मनुसंहिता को हिन्दू कानून संहिता का सबसे बड़ा स्रोत माना। उन्होंने लिखा है ''मनु संहिता जो हमें आज उपलब्ध है, वह नही है जो प्राकृतिक बौद्धकाल में आर्यों को ज्ञात था। [7] इस काल में महिलाओं की सुरक्षा, कल्याण, पवित्रता एवं सम्मान को काफी महत्व प्रदान किया गया था। निश्चित रूप से समाज सुधारकों ने कुछ सामाजिक कुप्रथाओं को समाप्त करने पर जोर दिया, लेकिन उन्होंने परिवार के आधारभूत पितृ–सत्तात्मक ढाँचे को सुरक्षित रखने की वकालत की। परिवार के अन्दर पति एवं पत्नी के बीच मनमुटाव एवं पत्नियों के साथ दुर्व्यवहार उन्होंने कभी प्रश्न नही उठाया। उन्होंने किसी तरह का ढाँचा परिवर्तन को स्वीकार नही किया। उदाहरण के लिये विधवा महिलाओं में वैश्यावृत्ति की बढ़ती घटनाओं को उन्होंने मध्यमवर्गीय पारिवारिक ढाँचे के लिए खतरा माना और उससे लड़ने के लिए विधवा पुनर्विवाह की जोरदार वकालत की। [8] इसी तरह बालविवाह पर भी गहरी चिन्ता व्यक्त की गई और कहा गया कि इसमें विधवापन की वृद्धि होगी, प्रजाति कमजोर होगी और कमजोर संतान पैदा होगी। समाज सुधारवादी नेतागण घर के अन्दर की महिलाओं के सम्मान वृद्धि जरूर चाहते थे। इसके लिए महिलाओं को शिक्षित करना जरूरी था। कहा गया कि महिलाओं को अपने घर को कुशलता से रखने के लिए शिक्षित रहने की आवश्यकता है। ठीक से बच्चे पालना, उनका चरित्र–निर्माण करना तथा पति के साथ सुखद दाम्पत्य जीवन बिताना पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक था।[9]

अतः समाज सुधारकों ने महिलाओं के लिए एक अलग पाठ्यक्रम तैयार करने पर जोर दिया। यह निश्चित रूप से समतावादी दृष्टिकोण नहीं था। उन्होंने महिलाओं को पुरूषों पर आश्रित रखकर पितृसत्ता को ही बढ़ावा दिया। महिलाओं के अहम मुद्दों को पुनः पृष्ठभूमि में धकेल दिया। ब्रिटिश शासन में पूर्व भारत में कानून की विभिन्न पद्धतियाँ लागू थी। ब्रिटिश शासकों ने लोगों के वैयाक्तिक एवं रिवाजी कानूनों में हस्तक्षेप नही करने की नीति अपनायी।[10] लेकिन ब्रिटिश न्यायिक पद्धति लागू होने के साथ ही इसमें परिवर्तन हुआ और हर जाति और समुदाय के वैयाक्तिक कानूनों को रेखांकित करने की आवश्यकता हुई। हिन्दू कानून के संबंध में सलाह दने के लिए प्रत्येक न्यायालय में पंड़ितों को बहाल किया गया।[11] इन पंडितों ने उत्तराधिकार एवं विवाह के मामले में निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने धर्मशास्त्रों की व्यवस्था को अपनाया, जिसका नतीजा यह हुआ कि उनकी परिधि में बहुत अस्तित्व को बनाये रखे थे। समाज सुधारकों ने सामाजिक–धार्मिक कुरीतियों को खत्म करने के लिए हस्तक्षेप की मांग की और सरकार ने तदानुसार 1827 के 1887 के बीच कई अधिनियम पारित किया। हिन्दू धार्मिक कानूनों को महत्व प्रदान किया गया। मुस्लिम समुदाय के लोगों ने जोरदार मांग की कि इस्लामी कानूनों पर ईमानदारी पूर्वक अमल किया जाय। फलतः सरकार ने मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) अधिनियम, 1937 एवं डिसॉल्यूशन ऑफ मुस्लिम मैरेज अधिनियम (1939) पारित किया। इनके द्वारा समुदायों के ऊ पर धर्म की पकड़ को मजबूत बना डाला गया। जाहिर है, महिलाओं के अधिकारों में काफी कमी आ गयी। धर्म की रक्षा के नाम पर महिलाओं को कुर्बान कर दिया गया। नये अधिनियमों ने जनजातीय समाज को बुरी तरह प्रभावित किया। उनका जबरदस्ती हिन्दूकरण शुरू हो गया। ब्रिटिश सरकार ने सामाजिक अधिनियम सिर्फ उच्च जाति की महिलाओं के हित में पारित किये। दलित व अन्य उपाश्रायी लोगों को लाभ पहुँचाने के लिए उसके पास कोई कार्य योजना नहीं थी। हिन्दू पुनर्विवाह अधिनियम ने हिन्दू समाज के उच्चस्तरीय लोगों को लाभ पहुँचाया। बाल–विवाह को कभी भी कानूनी तौर पर रोका गया। उससे उच्च जातियों में विधवाओं की संख्या में काफी कमी आयी। विधवा पुनर्विवाह के तहत जब कोई विधवा किसी दूसरे व्यक्ति से शादी कर लेती तो उसे अपने मृत पति की संपत्ति से बेदखल हो जाना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि बड़े पैमाने पर महिलाओं की आर्थिक हैसियत कम हो गयी। साथ पुनर्विवाह के उपरान्त महिलाओं को कुछ धार्मिक अनुष्ठान करने की हिदायत दी गयी। इससे बह्म मणवाद को बढ़ावा मिला।[12] ब्रिटिश सरकार द्वारा व्यक्तिगत कानून को लागू किया जाना 'विभाजन करो और शासन करो' (Devind and Rule) की नीति का परिणाम था। उनकी मुख्य दिलचस्पी तो वाणिज्य और व्यापार में थी। उन्होंने परिवार एवं विवाह तक ही अपनी चिलचस्पी को सीमित कर लिया। 1872 ई0 में विधवाओं को पंजाब में शादी के बाद में सम्पत्ति पर अधिकार मिला। लेकिन सरकार ने 'करेवा पद्धति को लागू करने पर जोर दिया।[13] 'करेवा पद्धति' के ऊ पर उपन्यासकार राजेन्द्र सिंह वेदी ने एक उपन्यास ''एक चादर मैली सी'' की रचना की।[14] इस पद्धति के अनुसार जब कोई बढ़ा भाई मर जाता था, तो उसका छोटा भाई अपनी भाभी को एक चादर माथे पर ओढ़ा देता था और उससे शादी करके उसकी सम्पत्ति को परिवार में ही रख लेता था। ब्रिटिश शासन भारत की महिला श्रमशक्ति के ऊ पर भी जोर दिया। पहले महिलाएं बड़ी संख्या में खेतों, खलियानों एवं कुटीर उद्योगों में काम करती थी लेकिन ब्रिटिश शासन का धीरे–धीरे बड़े उद्योग खुलने लगे और उनमें काम कर रही महिलाओं एवं अविवाहित लड़कियों को न्यूनतम मजदूरी देकर काम करवाना शुरू किया गया। राधा कुमार[15] ने महिला मजदूरों के में विस्तार से लिखा है कि नयी व्यवस्था ने महिला मजदूरों को और भी ज्यादा पुरूषों के अधीनस्थ कर दिया। आर्थिक ताकत कमजोर होने से किसी की भी संघर्ष करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। यह सच है कि महिलाओं को शिक्षिका के रूप में जीविका का नया आयाम प्राप्त हुआ। धनी वर्ग की विधवाओं और स्त्रियों की नियुक्ति शिक्षिका के रूप में हुई। मधुकिश्वर ने इस संदर्भ में लिखा है कि बहुत ही कम लोगों ने अपनी पत्नियों एवं लकड़ियों को इस पेशे को अपनाने के लिए उत्साहित किया।[16] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है न तो अंग्रेजी सरकार ने और न भारतीय समाज सुधारकों ने भारतीय महिलाओं को दमन एवं शोषण से मुक्ति दिलाने का ईमानदार प्रयास किया। ढाँचागत परिवर्तन किये वगैर पितृसत्ता में कोई परिवर्तन नही हो सकता था। लेकिन समाज सुधारकों द्वारा महिला प्रश्न को केन्द्र में लाने और महिलाओं गुणगाान करने से महिलाओं के लिए एक नये वातावरण का निर्माण हुआ। इस वातावरण ने हर तरह से भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठिभूमि तैयार की। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य लक्ष्य विदेशी साम्राज्यवादी शासन से मुक्ति पाना था। इसके लिए एक राष्ट्रीय पहचान विकसित करने की आवश्यकता थी। धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकजुटता की भावना पैदा करके राष्ट्रीय नेताओं ने पाश्चात्य सांस्कृतिक श्रेष्ठता एवं ब्रिटिश साम्राज्य के अमोघत्व की भावना को चुनौती पेश की। इन नेताओं ने इस बात को अच्छी तरह समझा कि महिलाओं को दरकिनार करके यह काम संभव नहीं था। इसके लिए महिलाओं को शिक्षित बनाने पर जोर दिया गया और उनका अह्वान किया गया कि वे हर किस्म के अमानवीय शोषण एवं दमन से लड़ने को तैयार रहें। महिलाओं की माँ छवि को उभारा गया। राष्ट्र का संबोधन 'माँ' के रूप में हुआ और 'भारत माता की जय' के नारे से आकाश गूंज उठा।[17] इस गौरवगाथा ओर गुणगान से महिलाओं को बहुत कुछ हासिल नहीं हुआ। अभी भी उन्हें बच्चों का पालन पोषण करने और पति की आज्ञा का पालन करने को ही कहा गया।[18] पार्थ चटर्जी के अनुसार राष्ट्रीय आदर्शो ने महिलाओं को नयी वैथिक पराधीनता में बांध दिया। जशोधरा बागची वं मैत्रेयी कृष्णा के अनुसार राष्ट्रीय आंदोलन के कारण महिलाओं की समानता का मुद्दा कभी ईमानदारी से नही उठाया गया।[19] गाँधी जी ने महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन एवं राजनीति में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। इसका जबर्दस्त रूप से महिला आंदोलन पर प्रभाव पड़ा गाँधी जी कई मायने में दूसरे समाज सुधारकों से भिन्न थे। पहली बार उन्होंने ही महिलाओं के लिए ऐसी भूमिका का चयन किया जो घर के बाहर निकल कर ही सम्पन्न किया जा सकता था। उन्होंने अनोखे ढंग से महिलाओं के व्यक्तिगत सम्मान का मुद्दा भी उठाया और राष्ट्रव्यापी बहस शुरू की। उनके लिए यह परदा, बालविवाह, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, शिक्षा की अस्वीकृति एवं सम्पत्ति से बेदखल किया जाना, सभी महिलाओं एवं पुरूषों के बीच असमानता का नतीजा था। यह असमानता कानूनों एवं रीति–रिवाजों के नकारने के कारण पैदा हुई थी। उन्होंने महिलाओं का आह्वान किया कि वे बिना किसी कानूनी भेदभाव के मेहनत करें। उन्होंने पिता की सम्पत्ति में पुत्र एवं पुत्रियों को बराबर का हकदार बनाया। निःसंदेह गाँधी जी की प्रशंसा करते हुए मधुकिश्वर लिखती है कि यह एक महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि थी कि गाँधी ने समाज ने उनकी पारम्परिक भूमिका को चुनौती दिये बगैर महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलनों के एक प्रमुख सामाजिक स्तम्भ के रूप में स्थापित कर दिया।[20] गाँधी जी के अनुसार सभी महिलाओं को स्वदेशी की भावना से उत्साहित होना चाहिए। पहली बार गाँधी ने महिलाओं के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका को निर्धारित किया। पहली बार महिलायें अब राजनीतिक निर्णय लेने में ही नही बल्कि आंदोलनों के उन क्षेत्रों
में महत्वपूर्ण निर्णय लेने वाली थी, जिसने लोगों के विचारों एवं जीवन को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। महिलाओं ने अब बहिष्कार के कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी, प्रदर्शनों में भागीदारी, सत्याग्रह पहचान बनायी थी। गाँधी जी ने महिलाओं को त्याग की प्रतिमूर्ति माना और कहा कि उनके

राजनीतिक कार्यक्रमों में भागीदारी का कोई यदि सही हकदार है तो वे महिलायें ही है।[22] उन्होंने कभी भी महिलाओं को आर्थिक रूप से कमजोर बनाने की बात नहीं सोची। उनकी ख ाादी ग्रामोद्योग की संकल्पना काफी हद तक महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने और उनके व्यक्तित्व के विकास की योजना की। जिस समय भारत में राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था, कई स्वतन्त्र महिला संगठनों ने जन्म लेना शुरू किया। देश सेविका संघ, नारी सत्याग्रह समिति, महिला राष्ट्रीय संघ, लेडीज पिकेटिंग बोर्ड, स्त्री स्वराज संघ एवं स्वंयसेविका संघ जैसे संगठनों की स्थापना हुई। इन संगठनों ने गाँधी के कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[23]

1928 में महिला राष्ट्रीय संघ की स्थापना कलकत्ता में हुई। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय स्त्री सभा की तरह देश की स्वाधीनता और महिलाओं की दशा में सुधार करना था। निश्चित रूप से यह संगठन नारीवादी से अधिक गाँधीवादी था।[24] इनकी नेता लतिका ने महिलाओं की गरीबी दूर करना आवश्यक माना। लतिका ने अपने लोगों को संदेश दिया–उठो, जागो, अपने देश को अच्छी तरह देखों। जैसे–जैसे आंदोलन ने जोर पकड़ा उसमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ी।

1926 में ऑल इण्डिया विमेंस कॉफ्रेस की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य महिलाओं को शिक्षा तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण देना था। 1930 और 1940 के दशकों में इस संस्था ने अपार लोकप्रियता हासिल की। आगे चलकर यह संस्था 'ऑल इंडिया विमेंस कॉफ्रेस फॉर एजुकेशन एण्ड सोशल रिफॉर्म' बन गई। बड़ी संख्या में महिलाओं ने असहयोग एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया। पहली बार गाँधी जी द्वारा चलाये गये सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी रही। धरना–प्रदर्शन, शराबबंदी, विदेशी वस्तु बहिष्कार, चौकीदार का बहिष्कार आदि महिलाओं के प्रमुख कार्यक्रम बने। ऑल इण्डिया विमेंस कॉन्फ्रेस ने साधारण महिलाओं के मुद्दे को भी उठाना शुरू किया। कमलादेवी चटटोपाध्याय एवं सरोजनी नायडू जैसी विख्यात प्रगतिशील महिलाओं का इस संगठन को आर्शीवाद प्राप्त था। 1931 में सरोजनी नायडू इसकी अध्यक्ष बनी।

एक ओर जहाँ कॉंग्रेस के नेतृत्व में महिलायें घर से बाहर निकलकर आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभा रही थीं, वहीं कम्यूनिटी पार्टी ने भी महिलाओं के बीच अपने आधार को व्यापक ब नाया। उषा बाई दांगे जैसी कम्यूनिटी महिलाओं ने बम्बई के सूती वस्त्र उद्योग की महिला श्रमिकों को संगठित किया। 1939 में महिला राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने मिलकर 'कॉंग्रेस महिला संघ' का गठन किया। इसक अलावा 'नेशनल फेंडरेशन ऑफ इंडियन वीमेन' और 'वीमेंस इंडिया एसोशिएसन' का भी गठन हुआ। इस संगठनों ने महिला शिक्षा, मताधिकार, परदा और व्यक्तिगत अधिकारों के मुद्दों को उठाया। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्ष 1947 के पूर्व भारत में कई महिलायें और महिला समूह व संगठन सक्रिय थे। भारत के स्वंतत्र होने से उनको महसूस हुआ कि शायद उनके मुख्य लक्ष्य
भी मिल गये हैं।

सन्दर्भ

1. कृष्णमूर्ति जे. (स0) 'वीमेन इ कोलोनियल इंडिया–एसेज ऑन सरवाइवल वर्क एण्ड स्टेट' दिल्ली, 1949 एवं कुमकुम संगारी एवं सुरेश वैद (स0), 'रिकास्टिंग वीमेन, एसेज इन कोलोनियल हिस्ट्री', नयी दिल्ली, 1949, 511–512।
2. आर्या साधना, 'वीमेन, जेंडर इक्विलिटी एण्ड स्टेट', नयी दिल्ली, 30–32।
3. राणाडे महादेव गोविन्द, 'रिलिजियस एण्ड सोशल रिफॉर्म, बम्बई, 1902, 50।
4. मंजुमदार वीणा, 'दि सोशल रिफॉर्म मूवमेंट इन इंडिया फ्रॉम राणाडे टू नेहरू', वी0आर0 नंदा (सं0), 'इंडियन वीमेन फ्रॉम पर्दा टू मॉडरनिटी', नयी दिल्ली, 1976, 42–46।
5. किश्वर मधु पूर्णिमा, 'दि डाउटर्स ऑफ आर्यावत', जे0 कृष्णमूर्ति, पूर्वोक्त, पृ. 104।
6. देसाई नीरा, 'वीमेन इन मॉडर्न इंडिया', बम्बई, 1957, पृ. 75–81।
7. किश्वर मधु, पूर्वोक्त, पृ.–104
8. वहीं, पृ. 75–113; राधाकृष्ण कुमार, 'स्त्री संघर्ष का इतिहास', 1800–1990, दिल्ली, पृ. 7–30।
9. वोर्थविक मैरादिथ, 'दि चेजिंग शेल ऑफ वमेुन इन बंगाल', 1849–1905, प्रिन्सटन, 2000, 60–108।
10. जयसिंह इन्दिरा, 'दि पॉलिटिक्स ऑफ पर्सनल लॉ', 1986, पृ. 6।
11. अब्राहम अम्मू, 'पर्सनल लॉज इन इंडिया', ए0आर0 देसाई, (सं0), 'वुमेन्स लिबरेशन एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ रिलिजियम पर्सनल लॉज इन इंडिया', बम्बई,।
12. चौधरी प्रेम, सोशियो–इकोनॉमिक डायमेन्संस ऑफ सर्टेन कस्टम्स एण्ड अटीच्यूड्स–वीमेन ऑफ हरियाणा इन कोलोनियल पीरियड, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, नवम्बर 28, 1987 पृ. 2061–65।
13. वहीं, कस्टम्स इन ए पीजेन्ट इकोनॉमी, कुमकुम संगारी और सुरेश वैद (सं0), पूर्वोवत, 1989, पृ. 315–329।
14. बेदी राजेन्द्र सिंह, 'एक चादर मैली सी', दिल्ली, 1985।
15. पूर्वोवत, पृ. 7–30।
16. मधुकिश्वर, पूर्वोवत, पृ. 104 ।
17. बागची जशोधरा, रिप्रजेटिंग नेशनलिज्मः आइडियोलॉजी ऑफ मदरहुड इन कालोनियल बंगाल, मधुकिश्वर, पूर्वोवत, पृ. 78–113।
18. भट्टाचार्य सुकुमारी, 'मदरहुड इन एन्सियेंट इंडिया'।
19. कृष्णाराजु मैत्रेयी (सं0), 'वीमेन स्टडीज इन इंडिया : सम पर्सपेक्टिव्स', बम्बई 1986, पृ. 23।
20. मधुकिश्वर, 'गाँधी एण्ड वीमेन', दिल्ली, 1986, पृ. 14।
21. वहीं, पृ. 15।
22. वहीं पृ. 15।
23. सिह लता 'राष्ट्रीय आंदोलन में महिलायें : भूमिका के सवाल', साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, (सं0), पूर्वोवत, पृ. 162–163।
24. वहीं